Volume-2, Issue-3, March-2015 ISSN: 2349-7637 (Online)

RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)

Research Paper

Available online at: www.rhimrj.co.in

समकालीन भारतीय दर्शन में मानववादी विचार (संक्षिप्त परिचय)

डॉ.राज नारायण व्यास

दर्शन शास्त्र विभाग, राज. डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)

मानव के समाज के रूप में संगठित होने की प्रारंभिक अवस्था से अब तक कर्तव्य-अकर्तव्य, करणीय-अकरणीय, देय-उपादेय, ग्राह्य-त्याज्य, शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित जैसे प्रश्न किसी न किसी रूप और आकार में विचारणीय रहे। है। विभिन्न नीतिशास्त्रीय विचारकों ने मानव-आचार की स्वमत और स्वविवेक के अनुसार सर्वोत्तम संहिता प्रस्तुत करने के प्रयास किए हैं। (मनुस्मृति, धर्मशास्त्र, पाश्चात्य नैतिक विचार आदि को इसी कोटि में रखा जा सकता है।)

परंपरागत नीतिशास्त्र प्रधानतः जहाँ मूल्यांकनपरक है। वहीं अधिनीतिशास्त्र विश्लेषणात्मक। यद्यपि परम्परागत नीतिशास्त्रियों ने भी किसी कार्य के औचित्य के आधार के रूप में सुख, उपयोगिता, आत्मपूर्णता आदि मापदण्ड प्रस्तुत करते हुए विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया है परन्तु अधिनीतिशास्त्र में तो विश्लेषण की यह प्रविधि केन्द्रीय भूमिका में है। किसी भी नैतिक निर्णय में 'क्या कहा गया है' की अपेक्षा 'क्यों और कैसे कहा गया है?' जैसे प्रश्न अधिनीतिशास्त्र में प्रमुखता प्राप्त करते हैं। इसीलिए अधिनीतिशास्त्र में नैतिक निर्णयों के स्वरूप को लेकर प्रकृतिवाद, वस्तुनिष्ठतावादसवेगवाद, परामर्शवाद आदि • सिद्धान्त प्रस्तुत किए जाते रहे हैं। इसी क्रम में नैतिक निर्णयों के उद्गम स्रोत तक पहुँचने के लिए मनोविश्लेषण के उपयोग का आग्रह इन दिनों प्रचलित होता जा रहा है और फ्रॉयड, जुंग, एरिकफ्रॉम आदि विचारकों के प्रयास इसी दिशा में हैं।

एरिकफ्रॉम (1900-1980) इस क्षेत्र में उल्लेखनीय विचारक है। वे एक व्यावसायिक मनोविश्लेषक के अलावा एक प्रतिबद्ध सामाजिक सिद्धान्तकार भी हैं जो वैयक्तिक मनो-समस्याओं के साथ ही सार्वजनिक समस्याओं पर भी ध्यान देते रहे हैं। उनके विचारों में एक प्रबल धार्मिक समझ, एक मानववादी नीतिशास्त्र के साथ ही नूतन संभावनाओं के प्रति एक मुक्त दृष्टि भी है। वे अनेक विरोधी माने जाने वाले विचार-बिन्दुओं की भी समीक्षा करते हुए अपने विचारों में उनका इलाध्य समन्वय प्रस्तुत करते हैं। अपने इस प्रयास में एक और उन्होंने मार्क्सवादीस्थापनाओं कीसम्यक् आलोचना करते हुए उनके सार को निस्संकोच ग्रहण किया है वहीं पारंपरिक धार्मिक मान्यताओं में अन्तर्निहित तथा समकालीन विचारकों के विचारों में उपस्थित मानववादी और अस्तित्ववादी आग्रहों को भी अपने विचारों, पुस्तकों, आलेखों व भाषणों समाहित किया है। शिक्षा इनके विचारों का केन्द्र न होते हुए भी सामाजिक स्वरूप तथा मानवीय कार्य-कलापों पर उनके विचार शिक्षा- जगत् को भी विशेषतः उनको जो एक अधिक सभ्य समाज तथा एक अधिक श्रेष्ठ जीवन-शैली की स्थापना के लिए प्रयासरत है-प्रभावित व प्रेरित करते हैं। उनके चिन्तन के केन्द्रीय बिन्दु हैं--स्वतन्त्रता, अलगाव, प्रेम और अस्तित्व।

फ्रॉम की रचनाओं में साइकोएनालेसिसएण्डरिलीजन (1950), सिगमण्डफॉयड'स मिशन (1958), मार्कस स कन्सेप्ट ऑफ मैन (1961) आदि के अलावा द फीयर ऑफ फ्रीडम, द आर्ट ऑफ लिविंग और मैनफॉरहिमसेल्फ आदि पुस्तकें लोकप्रिय व चर्चित रही है। आलोच्य पुस्तक 'मैनफॉरहिमसेल्फ–एनइन्क्वायरी इन टू द साइकोलॉजी ऑफ एथिक्स' में फ्रॉम नैतिक निर्णयों को मनोविश्लेषणात्मक आधार पर आधृत करने का आग्रह करते हैं।

'मैनफॉरहिमसेल्फ' में चार अध्याय हैं-- (1) समस्या, (2) मानववादी नीतिशास्त्र (3) मानव प्रकृति एवं चरित्र तथा (4) मानववादी नीतिशास्त्र की समस्याएँ। स्वयं लेखक इस पुस्तक के अपने विचारों को अपनी पूर्व पुस्तक 'एस्केपफ्रॉमफ्रीडम' में व्यक्त विचारों का विस्तार मानते हैं। फ्रॉम के अनुसार 'मनोविज्ञान को न तो दर्शनशास्त्र व नीतिशास्त्र से और न ही समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र से अलग किया जा सकता है।' प्रथम अध्याय में ही फ्रॉम केवल बौद्धिक आधारों पर निर्मित-निर्धारित नैतिक मानकों य मूल्यों की अपर्याप्तता को दिखलाते हुए मनोविज्ञान- विशेषतः मनोविश्लेषण की नैतिक मूल्यों व मानकों के निर्धारण के लिए महती उपादेयता घोषित करते हैं। उनके अनुसार मनोविज्ञान की प्रगति 'तथाकथित प्राकृतिक' और 'तथाकथित आध्यात्मिक' जगत् के विलगाय में नहीं अपितु यह तो एक ऐसे मानववादी नीतिशास्त्र का मार्ग प्रशस्त करता है जो मनुष्य को एक संपूर्ण 'मनो-आध्यात्मिक' इकाई के रूप में देखता है, जिसके अनुसार मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है To be himsellतथा जिसके लिए सर्वोत्तम साधन है Man be

for himself द्वितीय अध्याय का प्रारम्भ फ्रॉमवरपरागतप्राधिकारात्मकपतिशास्त्र की समीक्षा से करते है जिसमें बौद्धिक प्राधिकार का मापदण्ड 'सक्षमता' बताते हुए वे शुभ और अशुभ का विवेक बचपन से ही लादने की प्रवृति की और संकेत करते हैं। बच्चे के लिए शुभ-अशुभ की मानक उसके परिजनों की प्रतिक्रियाएँ होती है जबकि वयस्क अपने आवरण के औचित्य के लिए कुछ बौद्धिक आधार भी प्रस्तुत कर सकते हैं। फ्रॉम के शब्दों में मानव-विज्ञान (Science ol Man) का विषय मानव प्रकृति है। लेकिन यह विज्ञान मानव प्रकृति के सम्यक चित्र से प्रारम्भ नहीं करता। इसके विषय (मानव प्रकृति) की संतोषजनक परिभाषा इसके लक्ष्य और इसके परिसर के रूप में ही हो सकती है। इसकी प्रविधि है विभिन्न वैयक्तिक व सामाजिक स्थितियों में व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का प्रेक्षण और इस प्रेक्षण के आधार पर मानव प्रकृति के बारे में अनुमान।

अगले अध्याय में इसी बिन्दु को फ्रॉम मानव प्रकृति और चरित्र के विस्तृत विवरण व समीक्षण द्वारा स्पष्ट करते हैं। ये मानव की जैविक दुर्बलता के माध्यम से उसे पशुओं से भिन्न ठहराते हैं। जहाँ पशु स्वयं को अपने परिवेश के अनुकूल बनाने का प्रयास करते है वहीं मनुष्य एक ओर अपनी जैविक दुर्बलताओं के कारण वैसा अनुकूलन नहीं कर पात वहीं वे इसकी बजाय अपने परिवेश को ही अपने अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं। यह प्रवृति मनुष्यों में सहजात व अन्तर्निहित है। अतः स्पष्ट है कि मानवीय आचरण के मूल्यांकन के मापदण्डपाशवजगत् से भिन्न होंगे। इसी से मनुष्य के संदर्भ में अस्तित्यपरक व ऐतिहासिकतात्मक द्वन्द्व उपस्थित होता है। मनुष्य, प्रकृति में रहते हुए भी इसके अतिक्रमण के लिए प्रयत्नशील होता है। इसी अध्याय में वे मानद चरित्र की गतिक अवधारणा तथा उसके विभिन्न उत्पादक और अनुत्पादक आमुखीकरणों (Orientations) का वर्णन करते हुए केवल उत्पादक आमुखीकरण को ही मानव अस्तित्व के अनुभव व 'स्व' की प्राप्ति के लिए उपादेय मानते हैं। इसके लिए मनोविश्लेषणात्मक की आवश्यकता के संदर्भ में फ्रॉम लिखते हैं— अचेतन संप्रेरणा के मनोविश्लेषणात्मक प्रत्यय का महत्त्व नीतिशास्त्र के लिए किसी अन्य से कम नहीं है। नैतिक विचारों के विकास का लक्षण यह है कि मानवीय व्यवहार से संदर्भित इसके बैच निर्णय केवल उस व्यवहार पर नहीं अपितु उस व्यवहार के पीछे उपस्थित संप्रेरणाओं से संदर्भित हो। अतः अचेतन प्रेरणाओं की समझ नैतिकताओं के लिए आयामों का उद्घाटन करती है। इस प्रकार फॉर्मपरपरागत नीतिशास्त्र की रानीक्षा करते हुए नैतिक मानदण्डों की रचना के लिए एक अभिनव निकष प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इस निष को अपनाने की यह प्रक्रिया और इससे उत्पन्न होने पाली स्थितियाँ भी समस्या रहित नहीं है पुस्तक के अन्तिम अध्याय में फ्रॉम इसी मनोविश्लेषणात्मक नैतिक दर्शन-जिसे मानववादी नीतिशास्त्र कहना पसंद करते है-की कठिनाइयों पर भी डालते हैं। कई पारंपरिक प्रेमका वर्णन करते हुए मानवीय संचेतना के पारंपरिक व मानववादी रूपों, Pleasure and happiness में Pleasure के विभिन्न रूपों व साधन-साध्य द्वन्द्व पर भी टिप्पणी करते हैं लेकिन उनकी गंभीर टिप्पणी नीतिशास्त्रीय व नैतिक आचरण में भेद को लेकर है प्रचलित नैतिकता की सर्वोच्चता पर प्रश्न खड़ा करते हुए फ्रॉम कहते हैं- नैतिकता किसी सामाजिक समूह में प्रचलित नैतिक संहिता की स्वीकृति है. नैतिक व्यवहार-जिसे प्रायः नैतिकता समझा जाता है-कहीं अधिक ग्राही प्रत्यय है। इसका प्रयोग किसी विशिष्ट सांस्कृतिक समूह के व्यवहार की बजाय सामान्यतः मानवीय आचरण पर किया जाता है। एक नैतिक व्यक्ति सामान्यतः नैतिकता का पालक होता है परन्तु एक नैतिकता पालक का सदैव नैतिक होना आवश्यक नहीं है।

अतः फ्रॉम एक व्यापक नीतिशास्त्र की ही नहीं एक व्यापक नैतिकता की भी माँग करते हैं। उनके अनुसार मनुष्य स्वयं में न शुभ है और न ही अशुभ फ्रॉम के अनुसार शुभ या अशुभ का अन्तिम निर्णय स्वयं मनुष्य में निहित है। स्वयं को अपने जीवन और अपने आनन्द के प्रति उसकी गम्भीरता में निहित है। अपने और अपने समाज के समक्ष उपस्थित नैतिक चुनौतियों का सामना करने की उसकी इच्छा और अन्ततः 'स्वयं होने' और 'स्वयं के लिए होने' के उसके साहस में निहित है।

वास्तव में विवेकानन्द मूल रूप से न तो कोई राजशास्त्री थे और न राजनीतिज्ञ थे। अपनी मानववादी भावनाओं के कारण ही उन्होने राजनीति के क्षेत्र में चिन्तन किया। उन्होने मानववादी आधार पर आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का विवेचन किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती

स्वामी दयानन्द सरस्वती का बचपन का नाम मूलशंकर था। कम उम्र में ही सन्यास ग्रहण कर 'लिया। विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और वेदाध्ययन करते रहे। अन्त में मथुरा पहुँच कर स्वामी निरजानन्द से शिक्षा ग्रहण की।

अध्ययन समाप्त करने के बाद इन्होने उपदेश देने का कार्य प्रारंभ किया। अपने विचारों का फैलाने के लिए इन्होने मुंबई में आर्यसमाज की स्थापना की। इन्होने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश " प्रकाशित किया जिसमे इन्होने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ मे स्वधर्म स्वभाषा व स्वदेश की भावना को प्रोत्साहित किया। स्वामी दयानन्द जिन्होने सत्य के प्रकाश के साथ-साथ हिन्दी का प्रकाश भी फैलाया।'' 2 आर्य समाज ने स्थान-स्थान पर स्कूल और कॉलेज प्रारंभ किए जिनमें कुछ अंश वैदिक शिक्षा भी दी जाती है।

स्वामी दयानन्द का दर्शन वेदो और उपनिषदों के दर्शन पर आधारित है। उन्होने इसकी त्रेतावादी व्याख्या उपस्थित की है। यह व्याख्या उपस्थित करने में उन्होने एक ओर वेदो और उपनिषदो के वचनो के नए अर्थ प्रस्तुत किए है और दूसरी ओर इन पर लिखने वाले टीकाकारो शंकर रामानुज, मध्य इत्यादि की व्याख्याओं की आलोचना भी की है। स्वमी दयानन्द का दृष्टिकोण ज्ञानशास्त्र, और समाज दर्शन में यथार्थवादी रहा है। इसी कारण से वह उनके समाज सुधार आंदोलन को एक ठोस आधार प्रदान कर सका है।

स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के माध्यम से जनचेतना का आरम्भ किया। मूर्ति पूजा का खण्डन हिन्दू समाज को पतन से बचा लिया। जाति व्यवस्था के विरोध में आवाज उठाकर उन्होने लिए वर्ग में एक नई आशा उत्पन्न की जन्म से न कोई अच्छत है और न कोई हीन यह सन्देश देकर स्वामी दयानन्द ने मनुष्य मात्र में समानता का आदर्श उपस्थित किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार वेदाध्ययन का अधिकार सब मनुष्यों को है। समुचित शिक्षा का अर्थ है- शरीर का निर्माण, इन्द्रियो की साधना एवं बौद्धिक शक्तियो का विकास। -पालन सच्ची शिक्षा पद्धति की अनिवार्य शर्त है। शिक्षण कार्य चरित्रवान और विद्वान यद्वारा सम्पन्न होना चाहिए। उन्होने नारी शिक्षा पर भी उतना ही बल दिया जितना पुरुषो की शिक्षा पर

स्वामी दयानन्द ने नारी की गरीमा का समर्थन किया। स्त्रियो के समाजिक जीवन पर लगे अनुचित प्रतिबन्धों की निन्दा की। स्त्रियो को पढ़ाने का निषेध उनकी दृष्टि में मूर्खता, स्वार्थ निर्बुद्धिता का प्रभाव था। उन्होने स्त्रियों के समान अधिकारों की घोषणा की। दयानन्द ने अन्तर्जातिय विवाह को भी मान्यता दी तथा विधवा विवाह को भी उचित ठहराया।

स्वामी जी ने भारतीयों के हृदय मे स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभीमान उत्पन्न करने और देश मे नवजागरण का मन्त्र फूँकने का महान कार्य किया। वे भारतीय राष्ट्रवाद मे अनन्य पुजारी थे। पश्चिम की चकाचौंध से प्रभावित देशवासियो में अपनी संस्कृति की महानता और देश के प्रति अनुराग जगाया और कहा कि “आर्यवर्त एक ऐसा देश है जिसके समान भूगोल मे कोई दूसरा देश नहीं है। भारत देश ही सच्चा 'पारस मणि' है जिसे 'लोहे रूप दरिद्र विदेशी' छूने के साथ ही सुवर्ण और धनाढ्य हो जाते है” |

श्री अरविन्द घोष

श्री अरविन्द मानव एकता के आदर्श को उपस्थित करते है उनके अनुसार इसे किसी प्रकार के बाह्य दबाव, कानुन अथवा यांत्रिक नियमो पर आधारित न करके मानवता के धर्म पर आधारित किया जाना चाहिये। यह मानवता का धर्म ही मनुष्यों को संकीर्ण अहंकार से ऊपर उठायेगा और अन्य मनुष्यों से उसकी एकता स्थापित करेगा। मानवता ही मनुष्य का सबसे बड़ा देवता है। मानवता के धर्म का मूल सिद्धान्त यह है कि जाति, धर्म, वर्ण, राष्ट्र, पद ओर राजनीति तथा सामाजिक प्रगति के सब भेदो को भुलाकर मनुष्य को पवित्र माने। मनुष्य की पवित्रता का अर्थ है मानव शरीर, मानव जीवन, मानव हृदय मानव मन सब प्रकार की पवित्रता जिसके लिए इन सब को उन्मुक्त विकास का अवसर दिया जाना चाहिये।

व्युक्त राष्ट्र संघ अब तक मानव एकता के इस आदर्श को प्राप्त नही कर सका। इस आदर्श प्राप्त करने में संघ के दोषों से भी अधिक गंभीर तत्व समस्त राष्ट्रो का दो दलों में विभाजित
हो जाना है। इन दलों का परस्पर विरोध दूर हुए बिना अन्तर्राष्ट्रियता की भावना का सही अर्थो विकास नहीं हो सकता।

अस्तु सच्ची मानव एकता को समानता स्वतन्त्रता और भातृत्व के आदर्शो पर आधारित होना चाहिये। उसके पीछे मूल विचार सभी मनुष्यों की मौलिक एकता है। विभीन्न राष्ट्रो के मध्य की भौगोलिक दूरी मानव एकता के आदर्श में बाधक नही हो सकती। उनके अनुसार "मनुष्य जाति की एकता को पूर्णतया सच्चा होने तथा जीवन के गंभीरतम नियमों के अनुकुल बने रहने के लिए स्वतन्त्र समूहों पर आधारित होना चाहिये, और साथ ही समूहो को भी स्वतन्त्र व्यक्तियो का स्वभाविक संगठन होना चाहिये” 8

मानव एकता के आदर्श में श्री अरविन्द की आस्था उनके विकास सिद्धान्त पर आधारित है यदि मनुष्य विकाससमान प्राणी है तो जिस तरह वह विकास करके राष्ट्र पर पहुचा है उसी तरह वह क्रमशः विकास करके विश्व राष्ट्र पर भी पहुचेगा क्योंकि राष्ट्र अन्तिम और चरम ईकाई नही है। श्री अरविन्द के अनुसार प्रकृति में विकास की प्रक्रिया की हमें मानव एकता की ओर ले जायेगी मानव जाति के विकास के पीछे प्रकृति के प्रयोजन में आस्था रखने के साथ साथ श्री अरविन्द ने संयुक्त राष्ट्र संघ को सफल बनाने के लिए व्यावहारिक सुझाव उपस्थित किये है। ये निम्न

1. सभी राष्ट्रो को स्वेच्छा राष्ट्र संघ में सम्मिलित होना चाहिये।

2. राष्ट्र संघ का आधार न्याय और सत्यता के सिद्धान्त होने चाहिये।
3. राष्ट्र संघ का संविधान ऐसा होना चाहिये जो अन्तर्राष्ट्रिय समस्याओं को विश्वसनीय रूप से सुलझा सके।

निष्कर्ष

समाकालिन दार्शनीको के विचारो से स्पष्ट है कि उन्होने प्राचीन भारतीय चिन्तन को तत्कालीन समस्याओं पर लागू किया। अतः हम कह सकते है कि इन दार्शनीको ने अपने दर्शन का केन्द्र को बनाया है व उसकी समस्याओं का समाधान अपना प्रथम कर्तव्य मानते है ये जगत की व्याख्या यथार्थ रूप में करते है अतः मनुष्य का लक्ष्य केवल मोक्षप्राप्ति ही नही है बल्कि इस जगत की भी अपनी समस्याएं है जिन्हें सुलझाना मनुष्य का पहला धर्म है अतः ये अपने दर्शन में वैज्ञानिक तथ्यो को भी उतना ही महत्व देते है। इसके अतिरिक्त मानववाद, यथार्थवाद, सर्वधर्म समन्वय इनके दर्शन की प्रमुख विशेषता है । इन्होने मनुष्य साम्प्रदायिक धर्मो के स्थान पर मानव धर्म अपनाने पर जोर दिया है व यही सच्चा धर्म है । इस प्रकार हम कह सकते है कि समकालिन दार्शनीक अपने परमतत्व की व्याख्या तक ही सीमीत नहीं रखते बल्कि वे मनुष्य के

जीवन के प्रत्येक पहलुओ पर प्रकाश डालते है । और उनका उपयुक्त समाधान प्रस्तुत करते है। इस प्रकार समकालीन दार्शनीको ने अपने उपयोगी चिन्तन के द्वारा मनुष्य के मार्ग प्रशस्त किया है इन दार्शनीको के विचारो से प्रेरणा लेकर हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति कर सकते है, साथ ही उस लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकते है जो हमे मनुष्य से ईश्वरीय स्वरुप का साक्षात्कार करा सकता है । अतः समकालीन दार्शनीको के विचार हमे उचित दिशा निर्देश देने में सहायक सिद्ध हो सकते है।

2015, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)